आज हम जिस उथल-पुथल से गुजर रहे हैं उसमें लगता है हमारे पास कबीर नहीं होते तो हम किससे उम्मीद करते कि वह बीच बाजार खड़ा हो कह सके-

कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चुनाय। ता चढि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।
पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार। ताते यह चाकी भली, पीस खाए संसार।।
मूंड मुंडाय हरि मिले, सब कोई लेहि मुंडाय। बार बार के मूंडते, भेड़ ना बैकुंठ जाए।।
तन को जोगी सब करै, मन को करै ना कोय। सहजये सब सिधि पाइए, जो मन जोगी होय।।

शिक्षा का एक मतलब अगर आलोचनात्मक नज़रिया विकसित करना है तो उस मायने में कबीर शिक्षितों से भी शिक्षित हैं। वे अपने एक हाथ में आलोचना का चाकू लिए इस समाज की सर्जरी करते रहते हैं। उनके पास आलोचना का एक आइना है जिसे हर समय समाज की शक्ल के आगे किए रहते हैं और उसे उसकी विद्रूपता दिखाते रहते हैं। हम खुशनसीब हैं कि वे हमारे पास इतनी शताब्दियों से हैं। मगर आज जैसे उनकी सबसे ज्यादा जरूरत महसूस हो रही है। वे इन दिनों इतने प्रासंगिक हो गए हैं कि आज सबसे ज्यादा याद आ रहे हैं। सवाल यह है कि कबीर यह साहस कहां से जुटाते हैं और इसकी पहचान किस तरह कर पाते हैं कि क्या सही है और क्या गलत। यानी सवाल सही-गलत पहचानने व उसे कहने के नैतिक साहस का है।

हम मनुष्य हैं और मनुष्य को सब कुछ सीख कर हासिल करना पड़ता है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि सिर्फ कहने वाले को ही पहचानना और कहना नहीं सीखना है सुनने वाले को भी सुनना सीखना है। कबीर के समय में आधुनिक शिक्षा प्रणाली नहीं थी। उन्होंने अपनी सामाजिक परिस्थितियों में जीवन के अनुभव हासिल करते हुए सीखा होगा। आज हमारे पास बाकायदा शिक्षा व्यवस्था मौजूद है। वे किसी ऐसे लोकतांत्रिक सामाज में नहीं रह रहे थे जिसमें व्यक्ति को अभिव्यक्ति की आजादी हो। उसकी इस आजादी की रक्षा की गारंटी कोई संविधान देता हो। फिर भी वे पहचान कर कहने का खतरा उठाते हैं इसीलिए आज तक प्रासंगिक बने हुए हैं। हमारे सामने आज संविधान है, उसमें दी गई अभिव्यक्ति की आजादी है उसके बावजूद आज यह कहना जान दांव पर लगाने जैसे जोखिम से भरा महसूस हो रहा है। इसका मतलब साफ है कहीं गड़बड़ी बहुत गहरे स्तर पर है। यह गड़बड़ी हमारी शिक्षा व्यवस्था के असफल हो जाने के खतरनाक संकेत से भरी है।

शिक्षा के बारे में कहा जाता है कि वह अपने आप में कोई ऐसी निरपेक्ष चीज नहीं है कि बस चाहा और हो जाएगी। वह खुद एक दुधारी तलवार है और निर्भर करता है कि उसका इस्तेमाल किस तरह किया जा रहा है। शिक्षा सामाजिक पुनरुत्पादन का औजार भी बन सकती है तो बदलावकारी भूमिका भी निभा सकती है। आज हमारी शिक्षा पाठ्यपुस्तक केन्द्रित है यह ज्ञान की उसी ब्राह्मणवादी अवधारणा के साथ संगति है जिसमें ज्ञान का कर्म के साथ कोई रिश्ता नहीं है वह केवल सिद्धांत की चीज है। ज्ञान की ऐसी अवधारणा से वे वर्ग और जातियां वंचित रह जाती हैं जिनका जीवन श्रम आधारित है और जो समाज में उत्पादक कामों से जुड़ी हैं। हमारी देश की आबादी का लगभग अस्सी फीसदी हिस्सा इन्हीं वर्गों व जातियों से मिलकर बनता है। ये वे लोग हैं जो कौशल आधारित कामों में संलग्न हैं। इस तरह ज्ञान की यह पाठ्यपुस्तक आधारित धारणा इस बड़ी आबादी के ज्ञान की वैधता को खारिज करने का काम अप्रत्यक्ष रूप से करती है। उनके अनुभव, उनके कामों के विवरण कभी पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान का हिस्सा नहीं बन पाते। इस आबादी में भी श्रम का बड़ा हिस्सा स्त्रियों के हिस्से आता है। यानी हम अपनी बड़ी स्त्री आबादी के ज्ञान की उपेक्षा कर रहे होते हैं। हम चाहें तो इसमें महिलाओं, दलितों और पिछड़ी जातियों से जुड़ी शिक्षा संबंधी रूढ़ धारणाओं के मूल को पहचान सकते हैं। उदाहरण के लिए गणित लड़कियों का विषय नहीं है, जैसी धारणा के बनने के पीछे मूल वजह यह हो सकती है कि हमने गणित के लिए हमेशा एक ब्राह्मणवादी, मर्दवादी शिक्षणशास्त्र को तरजीह दी जिसमें स्त्रियों के अनुभव कभी शामिल ही नहीं किए गए। गणित की किताबों के ज्यादातर

उदाहरण बाजार, खरीदारी, खेत, नापतोल जैसी व्यवहारिक समस्याओं से भरे पड़े रहते हैं। उनमें धान रुपाई, अचार बनाने जैसे अनुभव संबंधी उदाहरण न के बराबर जगह पाते हैं।

गांधी ने शिक्षा में बदलावकारी भूमिका देखी थी और नई तालीम की अपनी अवधारणा में काम को पाठ्यचर्या के केन्द्र में लाकर उन्होंने इसके जरिए जाति व्यवस्था को चुनौती देने का काम किया था। गांधी ने हमारे समाज में मौजूद काम और ज्ञान के द्वैत को पहचाना और यह महसूस किया कि यही जातिव्यवस्था के मूल में मौजूद है (भूमि के असमान वितरण से इसका गहरा रिश्ता है)। हमारे लिए बिजली का स्विच ठीक करने वाला अथवा मोची कभी शिक्षित नहीं कहला पाया और शिक्षित इस तरह के कामों को करने में अपनी शान की कमतरी समझता रहा। *''गांधी द्वारा प्रस्तावित नई तालीम या बुनियादी शिक्षा ब्राह्मणवादी व उपनिवेशवादी शिक्षा से महत्वपूर्ण प्रस्थान था, क्योंकि हाथ के उत्पादक काम को स्कूली पाठ्यचर्या के केन्द्र में स्थान देकर इसने उस अन्तर्विरोध (काम और ज्ञान) के सामाने एक चुनौती प्रस्तुत की थी।''* (सारांश, काम व शिक्षा, फोकस समूह आधार प्रत्र, एनसीईआरटी)

श्रम भारतीय समाज की वह कमजोर नस रही है जिस पर हाथ धरते ही जाति का मंडप भरभराकर ढहना शुरू कर देता है। जाति को बनाए रखने के लिए जरूरी है कि श्रम का विभाजन बना रहे और उसके आधार पर कुछ लोग श्रम में जुते रहें और कुछ उनके श्रम पर माल उड़ाएं। श्रम का यह विभाजन काम और ज्ञान के विभाजन के रूप में हमारे सामने उभर कर आता है। और इस आधार पर हम उन लोगों के व्यावहारिक ज्ञान को शिक्षा में आने से रोकते रहे हैं जो श्रम आधारित काम से जुड़े हैं। यह हमारी आबादी का लगभग अस्सी प्रतिशत हिस्सा है। इस तरह हम अपनी आबादी के बड़े हिस्से के अनुभवों को शिक्षा में शामिल होने से रोक देते हैं। गांधी ने नई तालीम के जरिए इसी पर प्रहार करते हुए जाति पर निशाना साधा था। काम और ज्ञान के बीच का यह विरोधाभास हमारी शिक्षा में ज्ञान और कौशलों के बीच की खाई की तरह सामने आता है। जो लोग कुशल हैं उनके कौशलों को शिक्षा में शामिल नहीं किया जाता है और जो शिक्षित हो जाते हैं वे पर्याप्त अकुशल होते हैं।

गांधी की नई तालीम में काम का जो महत्व है वह जाति व्यवस्था के सामने चुनौती प्रस्तुत करता है। हम कल्पना करें कि एक कक्षा के सभी बच्चे रूमाल पर कशीदाकारी में व्यस्त हैं। यह बात एक साथ जाति व लिंग दोनों पर आधारित विभेद पर एक साथ प्रहार करती है। साथ ही इस अनुभव का इस्तेमाल ज्यामिती, विज्ञान, समाजविज्ञान, सौन्दर्य बौध आदि के विकास में किया जा सकता है। बच्चे कशीदाकारी में लगे श्रम के महत्व को समझ रहे होंगे और जान रहे होंगे कि कशीदाकारी का किसी जाति विशेष या लिंग विशेष से कोई लेना-देना नहीं है। और इसे करने से कोई कमतर नहीं हो जाता है।

यही बात हमारे उच्चवर्णीय ब्राह्मणवादी हुक्मरानों को पसंद नहीं आई और इसीलिए गांधी का रोपा यह पौधा एक विशाल वृक्ष का रूप धारण करता उससे पहले ही उसे मटियामेट कर दिया गया। लेकिन उक्त विश्लेषण हमें यह समझने में मदद कर सकता है कि कबीर अपनी दृष्टि कहां से पाते होंगे। वे जुलाहा थे अपने काम ने उन्हें यह नजरिया दिया होगा कि श्रम से दूर रह कर सिर्फ कर्मकांड आधारित ज्ञान सिवाय पाखंड के कुछ और नहीं हो सकता है और इसे बचाने में सिर्फ उन्हीं लोगों का हित है जो दूसरों के श्रम पर पर अपना कारोबार करते रहना चाहते हैं। इस बात की शिनाख्त उन्होंने समाज में मौजूद सभी समुदायों व धर्मों में की होगी। यह साहस भी उन्हें उनके हुनर ने ही दिया होगा कि वे इसे सबके सामने उजागर कर पाए।

हमारे पास अभी भी वक्त है कि हम हमारी शिक्षा में श्रम के महत्व को स्थापित करें। यह बात 'स्किल्ड इंडिया' से बिल्कुल जुदा है। यहां सिर्फ स्किल देने की बात नहीं की जा रही बल्कि यह कहने की कोशिश की जा रही है कि पाठ्यपुस्तकों पर अतिरिक्त केन्द्रीयता को कम करके कौशलों को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए। यह काम को पाठ्यचर्या में शामिल करके किया जा सकता है। काम से मिला अनुभव कौशलों के विकास के साथ-साथ बेहतर सैद्धांतिक समझ बनाने में भी मददगार होगा और समानता आधारित समाज निर्माण की ओर एक कदम होगा। ◆

प्रमोद